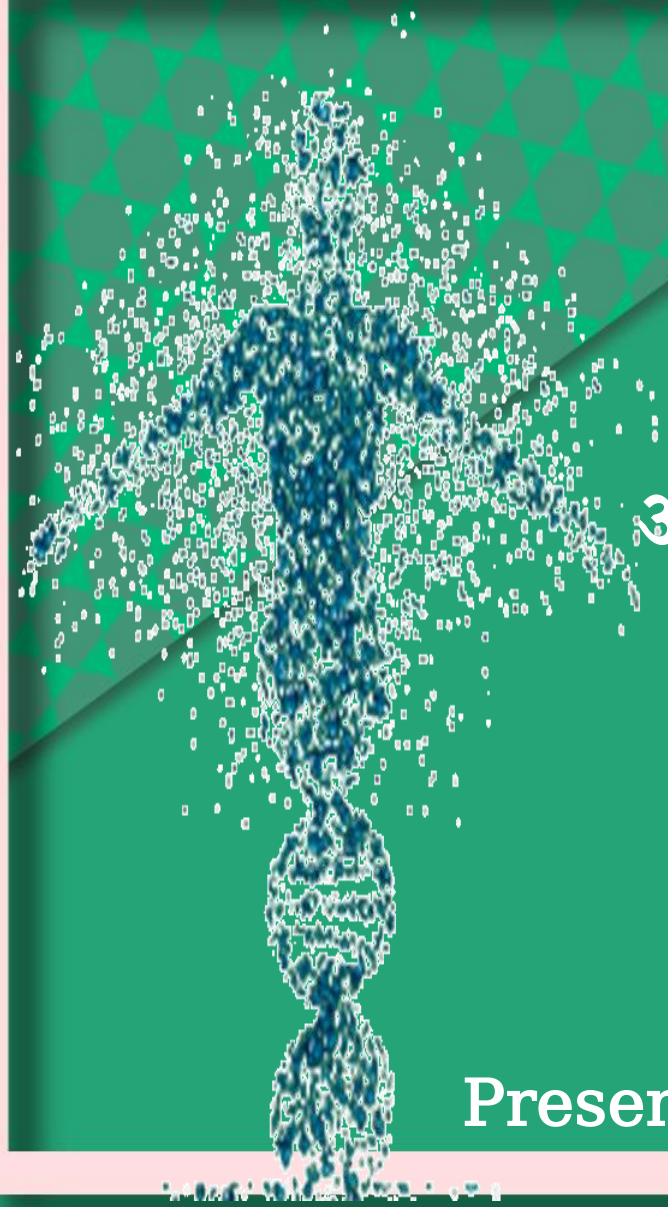

आचार्य श्रीनेमीचन्द्र सिद्धांतचक्रवर्ती

योग मार्गणा

Presentation Developed By: श्रीमति सारिका छाबड़ा

गाथा 1 : मंगलाचरण

सिद्धं सुद्धं पणमिय जिणिंदवरणेमिचंदमकलंकं।

गुणरयणभूसणुदयं जीवस्स परूवणं वोच्छं॥

- जो सिद्ध, शुद्ध एवं अकलंक हैं एवं
- जिनके सदा गुणरूपी रत्नों के भूषणों का उदय रहता है,
- ऐसे श्री जिनेन्द्रवर नेमिचंद्र स्वामी को नमस्कार करके
- जीव की प्ररूपणा को कहूंगा ।

www.JainKosh

fppt.com

पुग्गलविवाइदेहोदयेण मणवयणकायजुत्तस्स।
जीवस्स जा हु सत्ती, कम्मागमकारणं जोगो ॥216॥

- अर्थ - पुद्गलविपाकी शरीर नामकर्म के उदय से मन, वचन, काय से युक्त जीव की जो कर्मों के ग्रहण करने में कारणभूत शक्ति है उसको योग कहते हैं ॥216॥

योग

भाव योग

कर्म-नोकर्म को ग्रहण करने की जीव की शक्ति-विशेष

द्रव्य योग

आत्म-प्रदेशों में परिस्पन्दन (कम्पन)

इसमें निमित्त

मन वचन काय की क्रिया (चेष्टा) (अंगोपांग व शरीर नामकर्म के उदयपूर्वक)

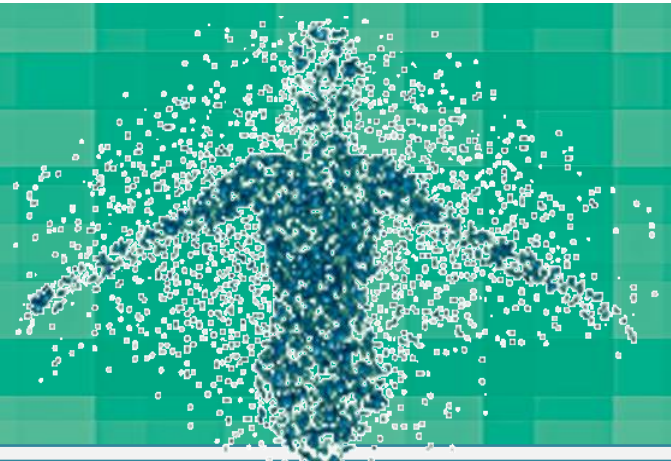

www.JainKo

कर्म

- ज्ञानावरणादिक 8 कर्म

नोकर्म

- औदारिक आदि शरीर

कर्म वर्गणा

- ज्ञानावरण आदि 8 कर्मरूप होने योग्य वर्गणा – कार्मण वर्गणा ।

नोकर्म वर्गणा

- 3 शरीररूप होने योग्य आहार वर्गणा एवं तैजस शरीररूप होने योग्य तैजस वर्गणा ।

www.JainKosh.org

कर्म-नोकर्म का आना या ग्रहण करना अर्थात्

कर्म-नोकर्म वर्गणारूप पुद्गल स्कंधों का कर्म-नोकर्मरूप परिणमना

www.JainKosh.org

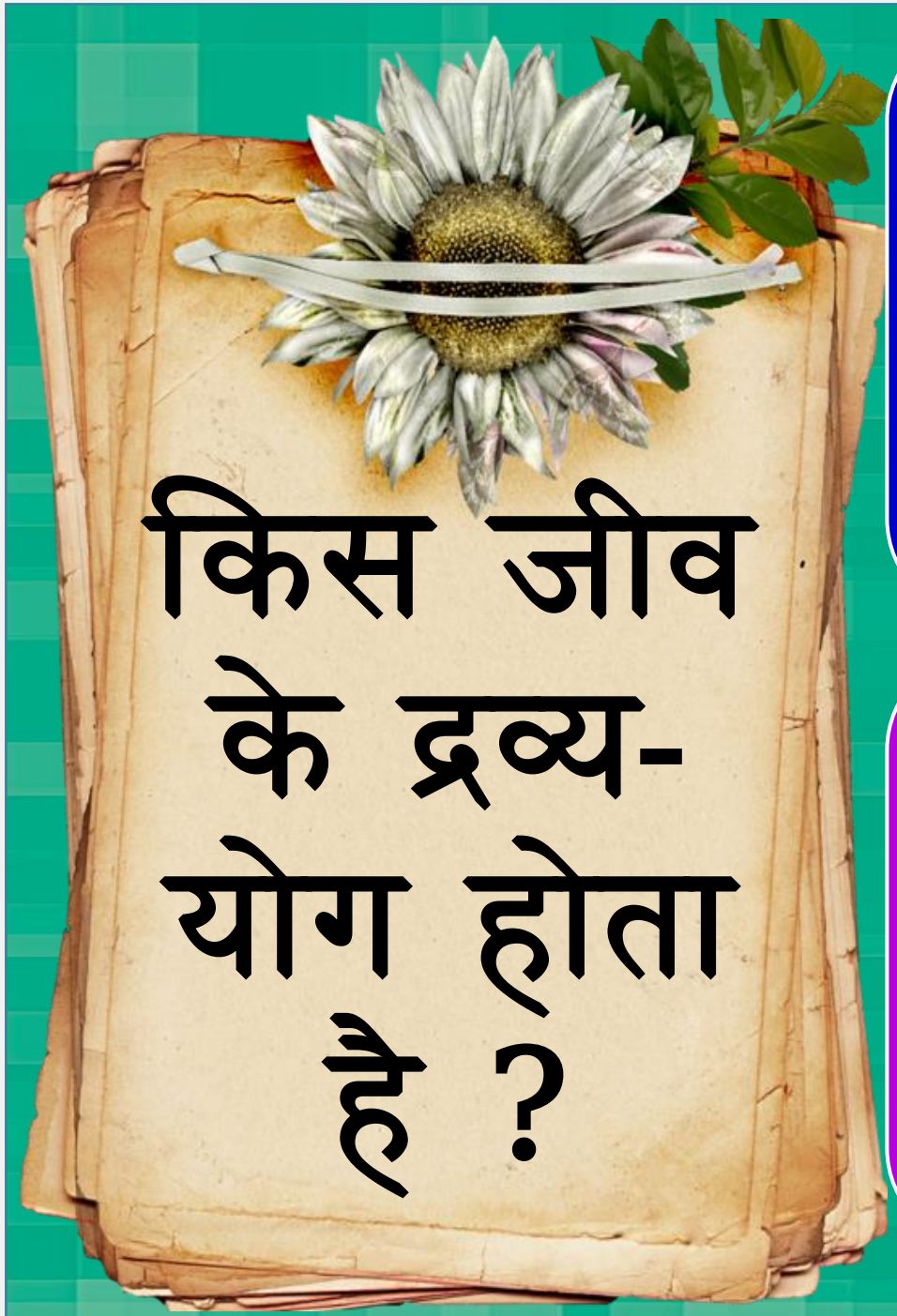

किस जीव के द्रव्य-योग होता है ?

1. पुद्गलविपाकी शरीर नामकर्म के उदय सहित

2. मन, वचन, काय के अवलंबन सहित

मणवयणाणपउत्ती, सच्चासच्चुभयअणुभयत्थेसु।
तण्णाम होदि तदा, तेहि दु जोगा हु तज्जोगा॥217॥

- अर्थ - सत्य, असत्य, उभय, अनुभय इन चार प्रकार के पदार्थों से जिस पदार्थ को जानने या कहने के लिए जीव के मन, वचन की प्रवृत्ति होती है उस समय में मन और वचन का वही नाम होता है और उसके सम्बंध से उस प्रवृत्ति का भी वही नाम होता है ॥217॥

www.JainKosh.org

योग मार्गणा के प्रकार

- मनोयोग (4)
  - सत्य
  - असत्य
  - उभय
  - अनुभय
- वचनयोग (4)
  - सत्य
  - असत्य
  - उभय
  - अनुभय
- काययोग (7)
  - औदारिक
  - औदारिक मिश्र
  - वैक्रियिक
  - वैक्रियिक मिश्र
  - आहारक
  - आहारक मिश्र
  - कार्मण

मनोयोग

सत्य, असत्य, उभय, अनुभय पदार्थ को

जानने में मन की प्रयत्नरूप प्रवृत्ति होती है,

उसे सत्य, असत्य, उभय, अनुभय मनोयोग कहते हैं ।

www.JainKosh.org

सत्य मनोयोग से सम्बंधित 3 बातें

जैसे जल को जल जानना ।

सत्य पदार्थ

जैसे जल

सत्य मन

सत्य पदार्थ को जाननेवाला मन

सत्य मनोयोग

सत्य मन की प्रवृत्ति

www.JainKosh.org

सब्भावमणो सच्चो, जो जोगो तेण सच्चमणजोगो।
तव्विवरीओ मोसो, जाणुभयं सच्चमोसो त्ति॥218॥

- अर्थ - समीचीन भावमन को (पदार्थ को जानने की शक्तिरूप ज्ञान को) अर्थात् समीचीन पदार्थ को विषय करने वाले मन को सत्यमन कहते हैं, और
- उसके द्वारा जो योग होता है उसको सत्यमनोयोग कहते हैं।
- सत्य से जो विपरीत है उसको मिथ्या कहते हैं तथा
- सत्य और मिथ्या दोनों ही प्रकार के मन को उभय मन कहते हैं। ऐसा हे भव्य! तू जान ॥218॥

www.JainKosh.org

	मन	मनोयोग
सत्य	समीचीन पदार्थ को विषय करने वाला मन	सत्य-मन के द्वारा जो योग (चेष्टा, प्रवर्तन) होता है
असत्य	विपरीत पदार्थ को विषय करने वाला मन	असत्य-मन के द्वारा जो योग (चेष्टा, प्रवर्तन) होता है
उभय	सत्य और असत्य रूप पदार्थ को विषय करने वाला मन	उभय-मन के द्वारा जो योग होता है

ण य सच्चमोसजुत्तो, जो दु मणो सो असच्चमोसमणो।
जो जोगो तेण हवे, असच्चमोसो दु मणजोगो॥219॥

- अर्थ - जो न तो सत्य हो और न मृषा हो उसको असत्यमृषा मन कहते हैं अर्थात् अनुभयरूप पदार्थ के जानने की शक्तिरूप जो भावमन है उसको असत्यमृषा कहते हैं और
- उसके द्वारा जो योग होता है उसको असत्यमृषा-मनोयोग कहते हैं ॥219॥

www.JainKosh.org

अनुभय पदार्थ

- जो न सत्य हो, न असत्य हो, उसे अनुभय पदार्थ कहते हैं ।

अनुभय मन

- अनुभय पदार्थ को विषय करने वाला मन अनुभय मन कहलाता है ।

अनुभय मनोयोग

- अनुभय मन के द्वारा जो योग होता है, उसे अनुभय मनोयोग कहते हैं ।

www.JainKosh.org

4 मन एवं 4 वचन के विषयभूत पदार्थ एवं उनके दृष्टांत

	विषय	दृष्टांत
सत्य	सत्यज्ञान गोचर पदार्थ	जल
असत्य	मिथ्याज्ञान गोचर पदार्थ	मरीचिका का जल
उभय	उभयज्ञान गोचर पदार्थ	कमण्डल को घट कहना (जल रखने का काम हो सकता है इसलिये सत्य, घट का आकार नहीं इसलिये असत्य)
अनुभय	निर्णय-रहित पदार्थ	"यह कुछ है" (विशेष ज्ञान न होने से सत्य नहीं, सामान्य ज्ञान होने से असत्य भी नहीं)

www.JainKosh.org

दसविहसच्चे वयणे, जो जोगो सो दु सच्चवचिजोगो।
तव्विवरीओ मोसो, जाणुभयं सच्चमोसो त्ति॥220॥

- अर्थ - वक्ष्यमाण जनपद आदि दश प्रकार के सत्य अर्थ के वाचक वचन को सत्यवचन और उससे होने वाले योग - प्रयत्नविशेष को सत्यवचनयोग कहते हैं तथा
- इससे जो विपरीत है उसको मृषा और
- जो कुछ सत्य और कुछ मृषा का वाचक है उसको उभयवचनयोग कहते हैं। ऐसा हे भव्य! तू समझ ॥220॥

www.JainKosh.org

सत्यवचन से सम्बंधित 4 चीजें

सत्य पदार्थ

जैसे जल

सत्य वचन

सत्य पदार्थ को कहने वाला वचन

भावसत्य

सत्यवचन की शक्ति

सत्य वचनयोग

भावसत्य की प्रवृत्ति विशेष

जैसे यह जल है (जल को जल कहना)

www.JainKosh.org

भावसत्य वचन क्या है ?

स्वर नामकर्म के उदय से

प्राप्त भाषा पर्याप्ति से उत्पन्न

भाषा वर्गणा के आलंबन सहित

जीव की शक्ति-विशेष

भाव-सत्य वचन है ।

➢इसी प्रकार भाव-असत्य वचन, भाव-उभय वचन और भाव-अनुभय वचन जानना चाहिए ।

असत्य पदार्थ	• जो सत्य न हो उसे असत्य पदार्थ कहते हैं ।
असत्य वचन	• असत्य पदार्थ को कथन करने वाला वचन असत्य वचन कहलाता है ।
असत्य वचनयोग	• असत्य वचन के द्वारा जो योग होता है, उसे असत्य वचनयोग कहते हैं ।

www.JainKosh.org

उभय पदार्थ

- जो कुछ सत्य हो, कुछ असत्य हो, उसे उभय पदार्थ कहते हैं ।

उभय वचन

- उभय पदार्थ को कथन करने वाला वचन उभय वचन कहलाता है ।

उभय वचनयोग

- उभय वचन के द्वारा जो योग होता है, उसे उभय वचनयोग कहते हैं ।

www.JainKosh.org

जो णेव सच्चमोसो, सो जाण असच्चमोसवचिजोगो।
अमणाणं जा भासा, सण्णीणामंतणी आदी॥221॥

- अर्थ - जो न सत्यरूप हो और न मृषारूप ही हो उसको अनुभय वचनयोग कहते हैं।
- असंज्ञियों की समस्त भाषा और संज्ञियों की आमन्त्रणी आदिक भाषा अनुभय भाषा कही जाती है ॥221॥

अनुभय पदार्थ

- जो न सत्य हो, न असत्य हो, उसे अनुभय पदार्थ कहते हैं ।

अनुभय वचन

- अनुभय पदार्थ को कथन करने वाला वचन अनुभय वचन कहलाता है ।

अनुभय वचनयोग

- अनुभय वचन के द्वारा जो योग होता है, उसे अनुभय वचनयोग कहते हैं ।

www.JainKosh.org

अनुभय वचन के प्रकार

असंज्ञियों (2 इंद्रियों से असंज्ञी पंचेंद्रिय) की अनक्षरात्मक भाषा

संज्ञियों की आमंत्रणी आदि भाषा

www.JainKosh.org

जणवदसम्मदिठवणा, णामे रूवे पडुच्चववहारे।
सम्भावणे य भावे, उवमाए दसविहं सच्चं॥222॥

- अर्थ - जनपदसत्य, सम्मतिसत्य, स्थापनासत्य, नामसत्य, रूपसत्य, प्रतीत्यसत्य, व्यवहारसत्य, संभावनासत्य, भावसत्य, उपमासत्य – इसप्रकार सत्य के दश भेद हैं ॥222॥

भत्तं देवी चंदप्पहपडिमा तह य होदि जिणदत्तो।
सेदो दिग्घो रज्झदि, कूरोत्ति य जं हवे वयणं॥223॥
सक्को जंबूदीवं, पल्लट्टदि पाववज्जवयणं च।
पल्लोवमं च कमसो, जणवदसच्चादिदिट्ठंता॥224॥

- अर्थ - उक्त दश प्रकार के सत्यवचन के ये दश दृष्टांत हैं – भक्त, देवी, चन्द्रप्रभ प्रतिमा, जिनदत्त, श्वेत, दीर्घ, भात पकाया जाता है, शक्र जम्बूद्वीप को पलट सकता है, पापरहित “यह प्रासुक है” ऐसा वचन और पल्योपम ॥223-224॥

दस प्रकार के सत्य व उनके दृष्टांत

क्र.	सत्य	स्वरूप	दृष्टांत
1	जनपद	अपने-अपने देश में मनुष्य व्यवहार में प्रवृत्त वचन	भक्त, भात, भाटु, वंटक, मुकूड, कुलु, चोरू आदि भिन्न-भिन्न शब्दों से एक ही चीज "भात" को कहना
2	सम्मति	बहुत मनुष्यों की सम्मति से सर्व साधारण में रूढ	पट्टरानी के सिवाय साधारण स्त्री को देवी कहना
3	स्थापना	किसी वस्तु में किसी भिन्न वस्तु का आरोप करना	चन्द्रप्रभ की प्रतिमा को चन्द्रप्रभ कहना
4	नाम	बिना किसी अपेक्षा व्यवहार के लिये नाम रखना	जिनेन्द्र ने नहीं दिया है पर "जिनदत्त" नाम रखना
5	रूप	पुद्गल के अनेक गुण होने पर भी रूप की मुख्यता करना	रस, गंधादि रहने पर भी रूप गुण की अपेक्षा किसी मनुष्य को "श्वेत" कहना

दस प्रकार के सत्य व उनके दृष्टांत

क्र.	सत्य	स्वरूप	दृष्टांत
6	प्रतीत्य/ आपेक्षिक	किसी विवक्षित पदार्थ की अपेक्षा से दूसरे पदार्थ का कथन करना	किसी छोटे पदार्थ की अपेक्षा अन्य को बड़ा कहना
7	व्यवहार	नैगमादि नयों की प्रधानता से वचन कहना	चावल पकाने को "भात पकाता हूं" ऐसा कहना
8	संभावना	असंभव बात को वस्तु के किसी धर्म के निरूपण के लिये कहना	इन्द्र जम्बूद्वीप को उलट सकता है (यहां इन्द्र की शक्ति बताना है)
9	भाव	इन्द्रिय अगोचर पदार्थों का सिद्धांत के अनुसार विधि-निषेध रूप भाव	अग्नि से पकायी वस्तु को प्रासुक कहना
10	उपमा	किसी प्रसिद्ध पदार्थ की समानता कहना	धान भरने के गड्ढेरूप संख्या को पल्योपम की उपमा देना

आमंतणि आणवणी, याचणिया पुच्छणी य पण्णवणी।
पच्चक्खाणी संसय-वयणी इच्छाणुलोमा य॥225॥
णवमी अणक्खरगदा, असच्चमोसा हवंति भासाओ।
सोदाराणं जम्हा, वत्तावत्तंससंजणया॥226॥

- अर्थ - आमन्त्रणी, आज्ञापनी, याचनी, आपृच्छनी, प्रज्ञापनी, प्रत्याख्यानी, संशयवचनी, इच्छानुलोम्नी, अनक्षरगता – ये नव प्रकार की अनुभयात्मक भाषाएँ हैं,
- क्योंकि इनके सुननेवाले को व्यक्त और अव्यक्त दोनों ही अंशों का ज्ञान होता है ॥225-226॥

9 प्रकार के अनुभय वचन

क्र.	वचन	स्वरूप	दृष्टांत
1	आमंत्रणी	बुलानेरूप	हे देवदत्त ! तुम आओ
2	आज्ञापनी	आज्ञारूप	तुम यह काम करो
3	याचनी	मांगनेरूप	तुम यह मुझको दो
4	आपृच्छनी	प्रश्नरूप	यह क्या है ?
5	प्रज्ञापनी	विनतीरूप	हे स्वामी ! मेरी यह विनती है
6	प्रत्याख्यानी	त्यागरूप	मैं इसका त्याग करता हूं
7	संशयवचनी	संदेहरूप	यह बगुलों की पंक्ति है अथवा ध्वजा है ?
8	इच्छानुलोम्नी	इच्छारूप	मुझको भी ऐसा ही होना चाहिए
9	अनक्षरगता	द्वीन्द्रियादि असंज्ञी जीवों की भाषा	

ऐसी और भी भाषा, जिससे व्यक्त-अव्यक्त अंश का ज्ञान हो, वह अनुभय भाषा है ।

प्रश्नः अनक्षर भाषा में सामान्यपना भी व्यक्त नहीं है, तब उसे अनुभय क्यों कहा ?

उत्तरः अनक्षर भाषा संकेतरूप वचन है,

जिससे वक्ता का हर्ष-विषाद आदि रूप अभिप्राय जाना जाता है ।

अतः वह अनुभय भाषा है ।

www.JainKosh.org

मणवयणाणं मूलणिमित्तं खलु पुराणदेहउदओ दु।
मोसुभयाणं मूलणिमित्तं खलु होदि आवरणं॥227॥

- अर्थ - सत्य और अनुभय मनोयोग तथा वचनयोग का मूल कारण पर्याप्ति और शरीर नामकर्म का उदय है।
- मृषा और उभय मनोयोग तथा वचनयोग का मूल कारण अपना-अपना आवरण कर्म है ॥227॥

मन-वचन योगों के अन्तरंग कारण

सत्य और अनुभय मनोयोग तथा वचनयोग का मूल कारण

⬇

पर्याप्ति और शरीर नामकर्म का उदय है।

मृषा और उभय मनोयोग तथा वचनयोग का मूल कारण

⬇

अपना-अपना आवरण कर्म के तीव्र अनुभाग का उदय है

www.JainKosh.org

मन-वचन योगों के अन्तरंग कारण

तीव्रतर आवरण के उदय से	• असत्य योग
तीव्र आवरण के उदय से	• उभय योग

www.JainKosh.org

दर्शन मोह और चारित्र मोह के उदय के कारण असत्य और उभय योग क्यों नहीं कहे ?

असत्य व उभय योग मिथ्यादृष्टि की तरह सम्यक्त्वी और संयमी जीवों के भी पाए जाते हैं ।

इसलिए इनका मुख्य कारण आवरण कर्म का उदय है, मोह नहीं ।

www.JainKosh.org

केवली भगवान को कौन-सा वचनयोग है ?

अनुभय

केवली के वचन श्रोता के कानों में पहुंचने के पूर्व तक

अनक्षररूप

कैसे?

सत्य

केवली के वचन श्रोता के कानों में पहुंचने पर

अक्षररूप

www.JainKosh.org

क्या केवली भगवान के मनोयोग है ?

हाँ, सत्य और अनुभय मनोयोग है ।

उनके आवरण का अभाव है, तो मनोयोग कैसे ?

मणसहियाणं वयणं, दिट्ठं तप्पुव्वमिदि सजोगम्हि।
उत्तो मणोवयारेणिंदियणाणेण हीणम्हि॥228॥

- अर्थ – हमारे जैसे मनसहित छद्मस्थ जीवों के मनपूर्वक ही वचनप्रयोग होता है। इसलिये इन्द्रियज्ञान से रहित सयोगकेवली के भी उपचार से मन कहा है ॥228॥

उपचार के होने में दो कारण हैं

1. निमित्त

2. प्रयोजन

www.JainKosh.org

मनोयोग के उपचार का निमित्त

जैसे छद्मस्थ के मनोयोगपूर्वक वचन व्यापार दिखाई देता है,

वैसे ही केवली भगवान के वचन भी मनोयोगपूर्वक होने चाहिए । ऐसे उपचार के निमित्त से केवली के मनोयोग है ।

अंगोवंगुदयादो, दव्वमणट्ठं जिणिंदचंदम्हि।
मणवग्गणखंधाणं, आगमणादो दु मणजोगो॥229॥

- अर्थ - अंगोपांग नामकर्म के उदय से हृदयस्थान में जीवों के द्रव्यमन की विकसित-खिले हुए अष्टदल पद्म के आकार में रचना हुआ करती है।
- यह रचना जिन मनोवर्गणाओं के द्वारा हुआ करती है उन मनोवर्गणाओं का श्री जिनेन्द्रचन्द्र भगवान सयोगकेवली के भी आगमन हुआ करता है, इसलिये उनके उपचार से मनोयोग कहा है ॥229॥

मनोयोग के उपचार का प्रयोजन

द्रव्यमन के लिए मनोवर्गणा का ग्रहण होना यह प्रयोजन है ।

तथापि मुख्य भावमनोयोग का अभाव है अतः उपचार से ही मनोयोग कहा है, परमार्थ से नहीं है ।

www.JainKosh.org

अथवा केवली के वास्तव में मनोयोग है
क्योंकि उनके पाया जाता है –

भावमनोयोग

कर्म-नोकर्म को ग्रहण करने
की शक्तिरूप

द्रव्यमनोयोग

मनोवर्गणा का द्रव्यमन रूप
से परिणमन

ऐसे मनोयोग का कार्य (उपचार से) –
जीवों पर दया, उपदेश आदि कार्य

पुरुमहद्दुदारुरालं, एयट्ठो संविजाण तम्हि भवं।
ओरालियं तमुच्चइ, ओरालियकायजोगो सो॥230॥

- अर्थ - पुरु, महत्, उदार, उराल – ये सब शब्द एक ही स्थूल अर्थ के वाचक है।
- उदार में जो होय उसको कहते हैं औदारिक । औदारिक ही पुद्गल पिण्ड का संचयरूप होने से काय हैं।
- औदारिक वर्गणा के स्कन्धों का औदारिक कायरूप परिणमन में कारण जो आत्मप्रदेशों का परिस्पंद है, वह औदारिक काययोग है ॥230॥

www.JainKosh.org

औदारिक काय

औदारिक

- उदार, महान, पुरु, स्थूल, उराल— ये सभी एकार्थवाची हैं ।
- उदार में जो हो, उसे औदारिक कहते हैं ।

काय

- काय याने संचयरूप पुद्गलपिण्ड

औदारिक शरीर नामकर्म के उदय से उत्पन्न हुआ औदारिक शरीर के आकाररूप स्थूल पुद्गल स्कंधों का परिणाम औदारिक काय है ।

सूक्ष्म जीवों के औदारिक शरीर तो सूक्ष्म हैं, फिर उनको औदारिक कैसे कहेंगे ?

आगे के जो वैक्रियिक आदि शरीर हैं,

उनसे यह शरीर स्थूल है,

इसलिए औदारिक स्थूल शरीर है ।

तथा इस शरीर की ऐसी रूढ़ संज्ञा है ।

www.JainKosh.org

औदारिक काययोग

औदारिक शरीर के अवलम्बन से

जीव के प्रदेशों में परिस्पंद का कारणभूत जो प्रयत्न होता है,

उसे औदारिक काययोग कहते हैं ।

www.JainKosh.org

ओरालिय उत्तत्थं, विजाण मिस्सं तु अपरिपुण्णं तं।
जो तेण संपजोगो, ओरालियमिस्सजोगो सो॥231॥

- अर्थ - हे भव्य ! ऐसा समझ कि जिस औदारिक शरीर का स्वरूप पहले बता चुके है वही शरीर जब तक पूर्ण नहीं हो जाता तब तक मिश्र कहा जाता है और उसके द्वारा होनेवाले योग को औदारिक मिश्रकाययोग कहते हैं ॥231॥

औदारिक मिश्रकाय

औदारिक शरीर अंतर्मुहूर्त काल तक अपूर्ण (अपर्याप्त) होता है । उस शरीर को औदारिक मिश्र कहते हैं ।

कार्मण और औदारिक वर्गणा का मेल होने से मिश्र कहते हैं ।

औदारिक मिश्रकाययोग

औदारिक मिश्रकाय के साथ जो आत्मा का प्रदेश परिस्पन्दरूप योग है, वह औदारिक मिश्रकाययोग है ।

यह योग शरीर पर्याप्ति की पूर्णता ना होने से औदारिक स्कंधों को परिपूर्णरूप से शरीररूप परिणमाने में असमर्थ होता है ।

www.JainKosh.org

* याने अभी शरीर पर्याप्ति के अभाव में औदारिक काययोग भी संभव नहीं है ।

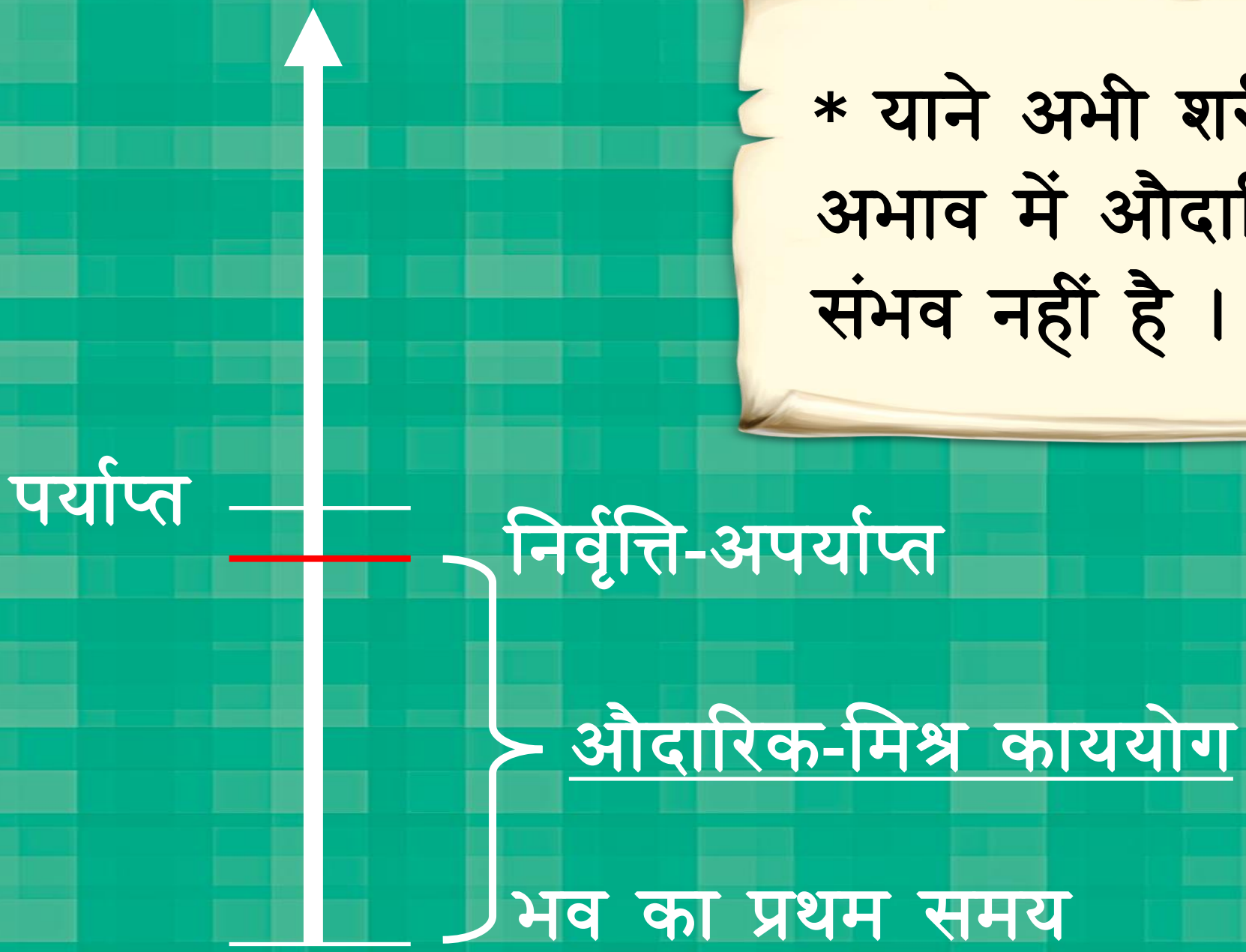

www.JainKosh.org

औदारिक काययोग किसके होगा ?

पर्याप्त मनुष्य और तिर्यंच

औदारिक मिश्र काययोग किसके होगा ?

लब्धि-अपर्याप्त मनुष्य, तिर्यंच

निर्वृत्ति-अपर्याप्त मनुष्य, तिर्यंच

केवली समुद्घात के समय

www.JainKosh.org

विविहगुणइड्ढिजुत्तं, विक्किरियं वा हु होदि वेगुव्वं।
तिस्से भवं च णेयं, वेगुव्वियकायजोगो सो॥232॥

- अर्थ - नाना प्रकार के गुण और ऋद्धियों से युक्त देव तथा नारकियों के शरीर को वैक्रियिक अथवा विगूर्व कहते हैं और
- इसके द्वारा होने वाले योग को वैगूर्विक अथवा वैक्रियिक काययोग कहते हैं ॥232॥

वैक्रियिक काय

वैगूर्व भी विक्रिया को कहा जाता है। जिससे शरीर का नाम होगा - वैगूर्विक,वैक्रियिक।

विक्रिया जिसका प्रयोजन है, वह वैक्रियिक है।

शुभ-अशुभ प्रकार के गुण अणिमा आदि अतिशयकारी ऋद्धि की महानता से सहित देव-नारकियों के शरीर को वैक्रियिक कहते हैं।

वैक्रियिक काययोग

वैक्रियिक शरीर के अवलंबन से

जीव के प्रदेशों में परिस्पंद का कारणभूत जो प्रयत्न होता है,

उसे वैक्रियिक काययोग कहते हैं ।

www.JainKosh.org

बादरतेऊवाऊ, पंचिंदियपुण्णगा विगुव्वंति।
ओरालियं सरीरं, विगुव्वणप्पं हवे जेसिं॥233॥

- अर्थ - बादर तेजस्कायिक और वायुकायिक तथा संज्ञी पर्याप्त पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च एवं मनुष्य तथा भोगभूमिज तिर्यञ्च, मनुष्य अपने-अपने औदारिक शरीर को विक्रियारूप परिणमाते हैं ॥233॥

किस-किसका शरीर विक्रियारूप पाया जाता है ?

सभी देव, नारकी के।

बादर पर्याप्त तैजकायिक के।

बादर पर्याप्त वायुकायिक के।

कर्मभूमिया संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त मनुष्य व तिर्यंच के।

भोगभूमिया तिर्यंच एवं मनुष्य के।

नोट: देव, नारकी को छोड़कर अन्य सभी जीवों के विक्रिया पाए जाने का नियम नहीं है ।

विक्रिया

पृथक्

मूल शरीर से भिन्न विक्रिया करना

अपृथक्

मूल शरीर को ही विक्रियारूप करना

www.JainKosh.org

किस जीव के कैसी विक्रिया होती है?

	पृथक्	अपृथक्
देव	✓	✓
नारकी	✗	✓
भोगभूमिया मनुष्य, तिर्यंच	✓	✓
चक्रवर्ती	✓	✓
शेष कर्मभूमिया मनुष्य, तिर्यंच	✗	✓
बादर वायु / तेजस्कायिक	✗	✓

विशेष

औदारिक शरीरवालों की विक्रिया औदारिक शरीर का ही परिणमन है।

औदारिक शरीरवाले जीवों को वैक्रियिक काययोग नहीं होता।

www.JainKosh.org

वेगुव्विय उत्तत्थं, विजाण मिस्सं तु अपरिपुण्णं तं।
जो तेण संपजोगो, वेगुव्वियमिस्सजोगो सो॥234॥

- अर्थ - वैगूर्विक का अर्थ वैक्रियिक बताया जा चुका है। जब तक वह वैक्रियिक शरीर पूर्ण नहीं होता तब तक उसको वैक्रियिक मिश्र कहते हैं और
- उसके द्वारा होनेवाले योग (आत्मप्रदेश परिस्पन्दन) को वैक्रियिक मिश्रकाययोग कहते हैं ॥234॥

वैक्रियिक मिश्र काय

वैक्रियिक शरीर अंतर्मुहूर्त काल तक पूर्ण (पर्याप्त) नहीं होता, तब तक उसे वैक्रियिक मिश्र काय कहते हैं।

कार्मण और वैक्रियिक वर्गणाओं का मेल होने से मिश्र कहते हैं।

वैक्रियिक मिश्र काययोग

वैक्रियिक मिश्रकाय के साथ जो आत्मा के प्रदेशों का परिस्पन्द है वह वैक्रियिक मिश्र काययोग है।

www.JainKosh.org

* याने अभी शरीर पर्याप्ति के अभाव में वैक्रियिक काययोग भी संभव नहीं है ।

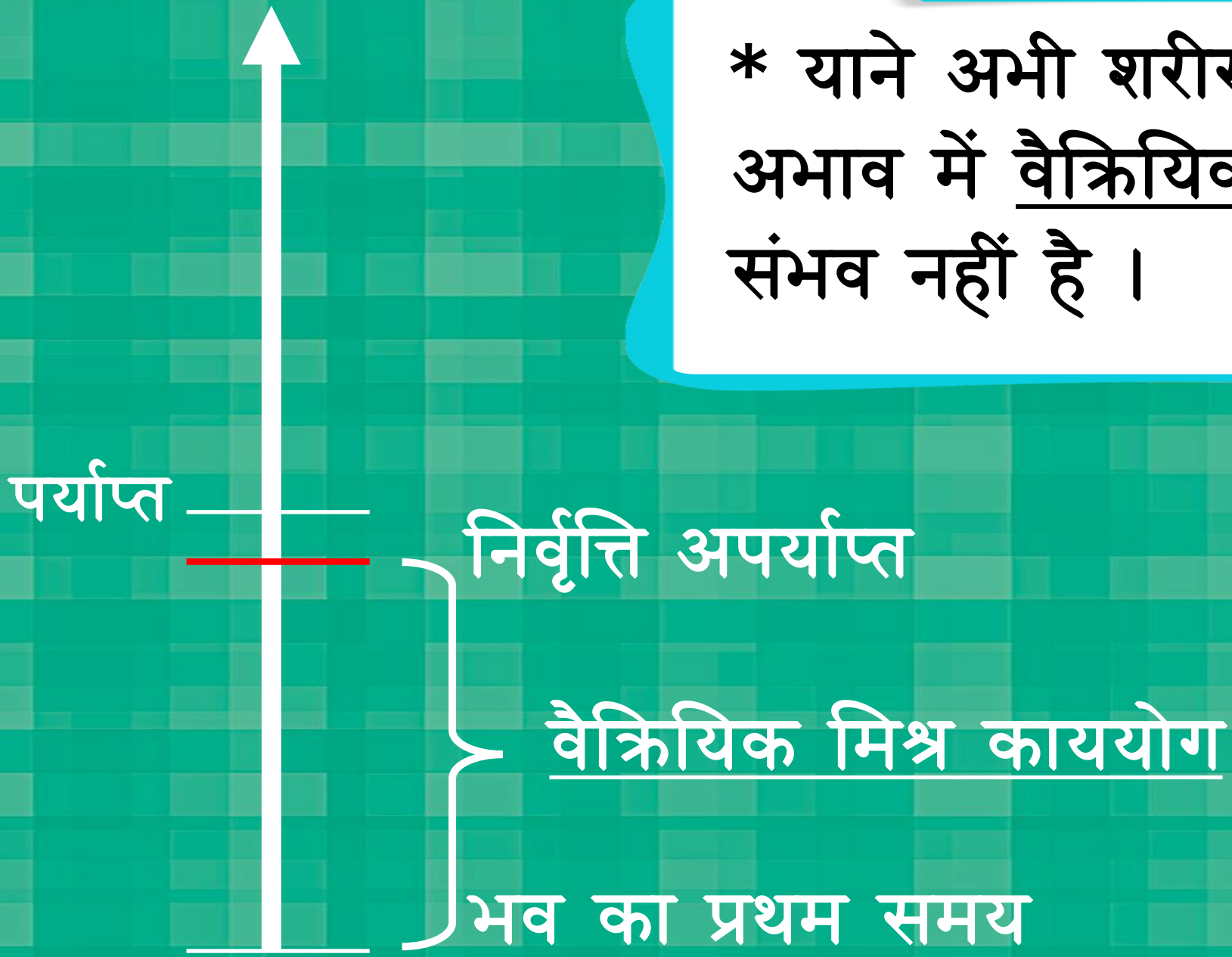

www.JainKosh.org

वैक्रियिक मिश्रकाययोग - विशेष

वैक्रियिक मिश्रकाययोग किसके होगा ?

- देव, नारकी के।

कब होगा ?

- जन्म से शरीर पर्याप्ति पूर्ण होने तक

इसका काल कितना है ?

- अन्तर्मुहूर्त मात्र

क्या इस योग में मरण संभव है ?

- नहीं।

www.JainKosh.org

आहारस्सुदयेण य, पमत्तविरदस्स होदि आहारं।
असंजमपरिहरणट्ठं, संदेहविणासणट्ठं च॥235॥

- अर्थ - असंयम का परिहार करने के लिये तथा संदेह को दूर करने के लिए आहारक ऋद्धि के धारक छठे गुणस्थानवर्ती मुनि के आहारक शरीर नामकर्म के उदय से आहारक शरीर होता है ।235॥

आहारक शरीर

किनके होता है ?	• आहारक ऋद्धिधारी छठे गुणस्थानवर्ती मुनि के
कौन-से कर्म से ?	• आहारक शरीर नामकर्म के उदय से

www.JainKosh.org

णियखेत्ते केवलिदुग-विरहे णिक्कमणपहुदिकल्लाणे।
परखेते संवित्ते, जिणजिणघरवंदणट्ठं च॥236॥

- अर्थ - अपने क्षेत्र में केवली तथा श्रुतकेवली का अभाव होने पर किन्तु दूसरे क्षेत्र में जहाँ पर कि औदारिक शरीर से उस समय पहुँचा नहीं जा सकता, केवली या श्रुतकेवली के विद्यमान रहने पर अथवा
- तीर्थंकरों के दीक्षा कल्याण आदि तीन कल्याणकों में से किसी के होने पर तथा
- जिन, जिनगृह की वन्दना के लिये भी आहारक ऋद्धिवाले छठे गुणस्थानवर्ती प्रमत्त मुनि के आहारक शरीर नामकर्म के उदय से यह शरीर उत्पन्न होता है ॥236॥

www.Jainkosh.org

क्षेत्र

निजक्षेत्र

- जहां अपनी गमन शक्ति है।

परक्षेत्र

- जहां अपने औदारिक शरीर की गमन शक्ति नहीं है।

www.JainKosh.org

आहारक शरीर कब निकलता है?

अपने क्षेत्र में केवली-श्रुतकेवली का अभाव होने पर एवं परक्षेत्र (जहां औदारिक शरीर से नहीं जा सकते) में सद्भाव होने पर

सूक्ष्म अर्थ को ग्रहण करने के लिये

संदेह को दूर करने के लिये

असंयम परिहार हेतु

तीर्थंकरों के दीक्षादि 3 कल्याणकों में गमन हेतु

जिन एवं जिनगृह की वंदना हेतु

उत्तम अंगम्हि हवे, धादुविहीणं सुहं असंहणणं।
सुहसंठाणं धवलं, हत्थपमाणं पसत्थुदयं॥237॥

- अर्थ - यह आहारक शरीर रसादिक धातु और संहननों से रहित तथा समचतुरस्र संस्थान से युक्त एवं चन्द्रकांत मणि के समान श्वेत और शुभ नामकर्म के उदय से शुभ अवयवों से युक्त हुआ करता है।
- यह एक हस्तप्रमाण वाला और आहारक शरीर आदि प्रशस्त नामकर्मों के उदय से उत्तमांग शिर में से उत्पन्न हुआ करता है ॥237॥

www.JainKosh.org

आहारक शरीर का स्वरूप

कहां से उत्पन्न होता है	उत्तमांग सिर में से
कितना बड़ा	1 हाथ प्रमाण
रंग	श्वेत वर्ण
संस्थान	समचतुरस्र
अवयव	शुभ नामकर्म के उदय से शुभ
संहनन और रसादि सप्त धातु	से रहित
व्याघात (बाधा) रहित	न किसी से रुकता, न किसी को रोकता है

अव्वाघादी अंतोमुहुत्तकालट्ठिदि जहण्णिदरे।
पज्जत्तीसंपुण्णे, मरणं पि कदाचि संभवई॥238॥

- अर्थ - वह आहारक शरीर पर से अपनी और अपने से पर की बाधा से रहित होता है; इसी कारण से वैक्रियिक शरीर की तरह वज्रशिला आदि में से निकलने में समर्थ हैं।
- उसकी जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अंतर्मुहूर्त काल प्रमाण होती है।
- आहारक शरीर पर्याप्ति के पूर्ण होने पर कदाचित् आहारक ऋद्धिवाले मुनि का मरण भी हो सकता है ॥238॥

www.JainKosh.org

आहारक शरीर का काल

जघन्य	• अन्तर्मुहूर्त
उत्कृष्ट	• अन्तर्मुहूर्त (परन्तु जघन्य से विशेष अधिक)

www.JainKosh.org

विशेष

क्या आहारक काययोगी का मरण हो सकता है ?

- हां, हो सकता है।

परन्तु आहारक मिश्रकाययोग में मरण संभव नहीं है।

www.JainKosh.org

आहरदि अणेण मुणी, सुहुमे अत्थे सयस्स संदेहे।
गत्ता केवलिपासं, तम्हा आहारगो जोगो॥239॥

- अर्थ - छठे गुणस्थानवर्ती मुनि अपने को संदेह होने पर इस शरीर के द्वारा केवली के पास में जाकर सूक्ष्म पदार्थों का आहरण (ग्रहण) करता है इसलिये इस शरीर के द्वारा होने वाले योग को आहारक काययोग कहते हैं ॥239॥

आहारक काययोग

आहारक शरीर के अवलंबन से

जीव के प्रदेशों में परिस्पंद का
कारणभूत जो प्रयत्न होता है,

उसे आहारक काययोग कहते हैं ।

www.JainKosh.org

आहारयमुत्तत्थं, विजाण मिस्सं तु अपरिपुण्णं तं।
जो तेण संपजोगो, आहारयमिस्सजोगो सो॥240॥

- अर्थ - आहारक शरीर का अर्थ ऊपर बताया जा चुका है।
- जब तक वह पर्याप्त नहीं होता तब तक उसको आहारकमिश्र कहते हैं और
- उसके द्वारा होने वाले योग को आहारकमिश्र काययोग कहते हैं ॥240॥

www.JainKosh.org

आहारकमिश्र काय

आहारक शरीर जब तक पूर्ण नहीं होता, तब तक उसे आहारकमिश्र कहते हैं।

मिश्र है अर्थात् आहार वर्गणारूप स्कंधों को आहारक शरीररूप परिणमाने में असमर्थ है।

यहां मिश्रपना औदारिक वर्गणा के मेल से है।

आहारकमिश्र काययोग

इस आहारकमिश्र-काय के साथ जो आत्म-प्रदेशों का चंचलपना है, उसे आहारक मिश्र काययोग कहते हैं।

* आहारक मिश्र काययोग का काल - अन्तर्मुहूर्त

www.JainKosh.org

* याने अभी शरीर पर्याप्ति के अभाव में आहारक काययोग भी संभव नहीं है ।

पर्याप्त

निर्वृत्ति अपर्याप्त

आहारक मिश्र काययोग

आहारक शरीर प्रारंभ करने का प्रथम समय

कम्मेव य कम्मभवं, कम्मइयं जो दु तेण संजोगो ।
कम्मइयकायजोगो, इगिविगतिगसमयकालेसु ॥241॥

- अर्थ - ज्ञानावरणादिक अष्ट कर्मों के समूह को अथवा कार्मणशरीर नामकर्म के उदय से होने वाली काय को कार्मणकाय कहते हैं और
- उसके द्वारा होने वाले योग – कर्माकर्षण शक्तियुक्त आत्मप्रदेशों के परिस्पन्दन को कार्मणकाययोग कहते हैं।
- यह योग एक, दो अथवा तीन समय तक होता है ॥241॥

www.JainKosh.org

कार्मण शरीर

ज्ञानावरणादि 8 कर्मों का स्कंध

कार्मण शरीर नामकर्म के उदय से जो शरीर है, वह कार्मण शरीर है।

कार्मण काययोग

कार्मण शरीर के साथ जो आत्म-प्रदेशों का चंचलपना है, वह कार्मण काययोग है।

www.JainKosh.org

कार्मण काययोग का काल

कब होता है ?	कितना समय
1) विग्रह गति में	1 समय, 2 समय अथवा 3 समय
2) केवली समुद्घात में	3 समय

कार्मण काययोग को छोड़कर एक योग का उत्कृष्ट काल = अंतर्मुहूर्त

www.JainKosh.org

कार्मण सम्बन्धी विशेषता

- कार्मण काययोग के समय कर्म का ग्रहण तो होता है
- पर नोकर्म वर्गणा का ग्रहण नहीं होता ।
- इसलिए कार्मण काययोग के समय जीव अनाहारक कहलाता है ।
- शेष 14 योगों के होने पर कर्म और नोकर्म दोनों ही वर्गणा का ग्रहण होता है ।

www.JainKosh.org

तैजस काययोग क्यों नहीं होता?

- तैजस शरीर के अवलंबन से कोई प्रदेश-परिस्पंद नहीं होता ।
- इसलिए तैजस शरीर संबंधी कोई योग नहीं पाया जाता है ।

www.JainKosh.org

वेगुव्विय-आहारय-किरिया ण समं पमत्तविरदम्हि।
जोगो वि एक्ककाले, एक्केव य होदि णियमेण॥242॥

- अर्थ - छठे गुणस्थान में वैक्रियिक और आहारक शरीर की क्रिया युगपत् नहीं होती और
- योग भी नियम से एक काल में एक ही होता है ॥242॥

योग और प्रवृत्ति सम्बन्धी नियम

एक समय में 1 ही योग होता है ।

संस्कार से एक साथ तीनों योगों की प्रवृत्ति देखी जा सकती है ।

छठे गुणस्थान में संस्कार से भी वैक्रियिक और आहारक की क्रिया एक साथ नहीं होती है ।

www.JainKosh.org

जेसिं ण संति जोगा, सुहासुहा पुण्णपावसंजणया।
ते होंति अजोगिजिणा, अणोवमाणंतबलकलिया॥243॥

- अर्थ - जिनके पुण्य और पाप के कारणभूत शुभाशुभ योग नहीं हैं उनको अयोगिजिन कहते हैं।
- वे अनुपम और अनंत बल से युक्त होते हैं ॥243॥

अयोगी जीव

चौदहवें गुणस्थानवर्ती एवं गुणस्थानातीत सिद्ध

पुण्य-पाप के कारणभूत शुभाशुभ योगरहित

अनुपम और अनंत बलसहित

www.JainKosh.org

- Reference : गोम्मटसार जीवकाण्ड, सम्यग्ज्ञान चंद्रिका, गोम्मटसार जीवकांड - रेखाचित्र एवं तालिकाओं में

Presentation developed by
Smt. Sarika Vikas Chhabra

- For updates / feedback / suggestions, please contact
  - Sarika Jain, sarikam.j@gmail.com
  - www.jainkosh.org
  - ☎: 94066-82889